इकाई 13 जापान का औपनिवेशिक साम्राज्य और उसकी पराजय

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 साम्राज्यवाद : परिभाषा एवं बहस

13.3 जापानी प्रसार का ढाँचा

13.3.1 प्रारंभिक दौर

13.3.2 जापान का औपचारिक साम्राज्य

13.3.3 औपनिवेशिक प्रशासन

13.3.4 उपनिवेशों के साथ आर्थिक संबंध

13.4 प्रसार की विचारधाराएँ

13.5 औपनिवेशिक नीति : मान्यताएँ एवं आमुख

13.6 1931 के बाद की प्रसारवाद नीति

13.6.1 मांचूकुओ की स्थापना

13.6.2 चीन में आक्रमण का जारी रहना

13.6.3 जापान का धुरी शक्तियों के साथ शामिल होना

13.6.4 दूसरा विश्व युद्ध

13.7 सारांश

13.8 शब्दावली

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको :

- जापानी साम्राज्यवाद की मुख्य विशेषताओं की जानकारी होगी,
- जापान के द्वारा अपने अनौपचारिक एवं औपचारिक साम्राज्य पर उपयोग किए गए नियंत्रण के प्रसार एवं प्रकृति का ज्ञान होगा,
- सर्व-एशियावाद के उद्देश्यों एवं विचारधारा का ज्ञान होगा, और
- जापानी प्रसारवाद के पीछे सामाजिक एवं राजनीतिक गुटों का ज्ञान भी हो सकेगा।

13.1 प्रस्तावना

19वीं सदी के मध्य में जापान के रूपांतरण के साथ-साथ दूसरे देशों के साथ संबंधों के एक ढाँचे का भी निर्माण किया गया। सापेक्ष तौर पर जापान बाकी विश्व से अलग-थलग था और उसने एक ''बंद देश'' **(साकोकू)** की नीति का अनुसरण किया था। फिर भी इसका अर्थ यह न था कि तोकूगावा जापान का अन्य देशों के साथ संपर्क न था। तोकूगावा जापान ने पश्चिमी देशों के साथ अपने संबंधों को तोड़ लिया था किंतु उसने कोरिया के साथ अपने

कूटनीतिक संबंधों को बनाए रखा और समानता के आधार पर चीन के साथ भी अपने संबंधों को स्थापित करने के प्रयास किए। जापान इस अनुभव से उस समय पश्चिमी देशों के साथ सशर्त लाभ उठा सका, जब उन्होंने जापान को कूटनीतिक संबंध स्थापित करने तथा स्वयं को विदेशी व्यापार के लिए खोलने हेतु बाध्य किया। .

विश्व के साथ जापान के संबंधों के प्रतिमान का निर्धारण उस पश्चिमी साम्राज्यवाद की पृष्ठभूमि ने किया जिसने संकट की एक भावना को उत्पन्न किया। यह संकट की भावना दासत्व की थी और दासत्व के इस भय ने जापानी शासक तंत्र को राष्ट्र का निर्माण करने के योग्य बनाया। दूसरी ओर इस भय ने उसकी सीमाओं के प्रसार को तर्कसंगत भी बनाया तथा इस प्रसार ने सुरक्षा के हितों या बाज़ारों पर अधिकार करने या उस कच्चे माल की आपूर्ति को सुनिश्चित किया जो इसके विकास के लिए निर्णायक था। जापान के प्रसार के कारणों की व्याख्या कई प्रकार से की गई है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस नीति का अनुसरण सामंती सैन्यवादी मूल्यों को जारी रखने के लिए किया गया, परंतु कुछ विद्वानों का तर्क है कि इस नीति को पूँजी की कमी के कारण अपनाया गया और जापान के लिए यही एक ऐसा माध्यम था जिसके द्वारा वह विकास के लिए आवश्यक संसाधन संग्रहित कर सकता था। लेकिन कुछ अन्य विद्वानों ने जापान की इन प्रसारवादी नीतियों के पीछे राजनीतिक एवं राष्ट्रवादी भावनाओं को देखा है। इस इकाई में जापान की प्रसारवादी नीतियों का विवरण किया गया है। साम्राज्यवाद के सिद्धात से बहस को प्रारंभ करते हुए इसके अंदर यह विश्लेषण किया गया है कि जापान क्यों और कैसे एक साम्राज्यवादी शक्ति बन गया। जापान ने जिन साम्राज्यवादी नीतियों को अपनाया और उनका उपनिवेशों पर जो प्रभाव हुआ– इस इकाई में इस दूसरे पक्ष का भी विवरण किया गया है।

13.2 साम्राज्यवाद : परिभाषा एवं बहस

साम्राज्यवाद की प्रकृति का परीक्षण कई विद्वानों के द्वारा किया गया है और जापान की स्थिति पर कुछ लिखने से पूर्व यह काफी उपयोगी होगा कि इन विद्वानों के तर्कों का संक्षेप में विवरण किया जाए। साम्राज्यवादी प्रसार के कारणों पर सबसे अधिक प्रभावशाली तर्क 1902 में जे. हॉब्सन के द्वारा दिए गये। उसका कहना था कि ग्रेट ब्रिटेन जैसे देशों के पास बहुत अधिक औद्योगिक उत्पादन क्षमता तथा ऐसी अतिरिक्त पूँजी थी जिसका निवेश देश के अंदर नहीं किया जा सकता था और इन सभी ने इन देशों को नए क्षेत्रों की तलाश के लिए बाध्य किया। बैंकर्स एवं रोकड़ियों (फाइनेन्सर्स) की आवश्यकता के पीछे ऐसी राजनीतिक नीतियाँ थीं जिन्होंने नियंत्रण का प्रसार कर साम्राज्यवाद की स्थापना की। इस तर्क की वी. लेनिन ने और सुस्पष्ट व्याख्या करते हुए दिखाया कि साम्राज्यवाद एकाधिकार पूँजीवाद का एक ऐसा चरण है जब घरेलू बाज़ार में अतिरिक्त पूँजी की खपत नहीं हो पाती और तब पूँजीपति उपनिवेशों पर प्रभाव के उन क्षेत्रों में अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जो राजनीतिक तौर पर संरक्षित बाजार होते हैं।

इन तर्कों पर बहस की गई और इनको संशोधित किया गया। 1953 में गालाघर तथा रोबिंसन ने अपने लेख ''मुक्त व्यापार का साम्राज्यवाद'' में विकास के तीन चरणों को बताया। प्रथम चरण व्यापारिक साम्राज्यवाद का था जब साम्राज्यवादी देश अपने राजनीतिक प्रभुत्व का उपयोग उपनिवेशों के आर्थिक लाभों को सुरक्षित करने के लिए करता है। तीसरा चरण वही था जिसकी पहचान हॉब्सन ने की। लेकिन दूसरा चरण मुक्त व्यापार का साम्राज्यवाद था और इस चरण में व्यापार पर पूर्णाधिकार ही सबसे महत्वपूर्ण था। इस चरण का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण ग्रेट ब्रिटेन हो सकता है। इस काल में चीन तथा दक्षिण अमेरिका में संरक्षित एवं प्रभाव क्षेत्रों की स्थापना की गई। यही वह समय था जबकि साम्राज्य का अधिकतम प्रसार हुआ।

जोसेफ शुम्पीटर तथा दूसरे विद्वानों ने साम्राज्यवाद के प्रसार के लिए आर्थिक कारणों की अपेक्षा अन्य कारणों पर अधिक बल दिया है। कार्लटन हेज का कथन है कि राष्ट्रों का प्रसार इसलिए हुआ क्योंकि उन्होंने राष्ट्रीय सम्मान को बढ़ाने की इच्छा की। शुम्पीटर ने तर्क दिया कि पूँजीवाद एक तर्कसंगत व्यवस्था है इसलिए प्रसार का पूँजीवाद के साथ कोई संबंध नहीं है बल्कि इसका प्रतिनिधित्व पूँजीवाद से पूर्व की शक्तियों के द्वारा किया गया। प्रसार का समर्थन सैन्यवादियों, भूस्वामी कुलीनों के द्वारा किया गया और इससे स्पष्ट है कि पूँजीवाद अभी भी अविकसित था। शुम्पीटर निश्चित रूप से जर्मनी को अपने मस्तिष्क में रखते हुए इन तर्कों को प्रस्तुत कर रहा था।

जापान के प्रसारवाद की नीति का विश्लेषण विद्वानों द्वारा भिन्न दृष्टिकोणों में किया गया। इस संदर्भ में सबसे अधिक प्रभावशाली मार्क्सवादी विश्लेषण ओ. तानिन तथा ई. योहान के द्वारा प्रस्तुत किया गया। इन दोनों ने कहा कि जापान ने अपने क्षेत्र का प्रथम बार प्रसार 1894 के बाद किया क्योंकि सामुराई चीन की मुख्य भूमि पर नियंत्रण स्थापित करना और ''श्वेत साम्राज्यवाद'' के विरुद्ध संघर्ष करना चाहते थे। जापान के पास एक स्वतंत्र प्रसार को जारी रखने की ताकत की कमी थी और इसी कारणवश उसने ब्रिटेन के साथ एक असमान गठबंधन किया। रूस-जापान युद्ध तक जापान अपनी आर्थिक शक्ति को बढ़ाने के लिए ''प्रारंभिक पूँजीवादी संचयन'' करने के लिए प्रयासरत था और उसका प्रसार ''वित्तीय पूँजीवाद'' की उपज न था। लेकिन रूस-जापान युद्ध के बाद जापान एक पूँजीवादी समाज अधिक बन गया किंतु उसकी प्रसारवादी नीतियों का सामाजिक आधार सम्राट के अधीन सेना तथा उदित होते पूँजीपति वर्ग के बीच का गठबंधन निरंतर जारी रहा। यह गठबंधन मेजी पुनर्स्थापन के साथ मिलकर बना था और मेजी पुनर्स्थापन अधूरी बुर्जुआ क्रांति थी। कृषि में विशेष तौर पर सामंती संबंधों के जारी रहने ने घरेलू अर्थव्यवस्था पर एक दबाव का कार्य किया और जिसके कारण खरीदने की शक्ति बनी रही तथा उद्योगों को विदेशों में बाज़ार तलाश करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस तरह से जापानी साम्राज्यवाद की मुख्य चिंता व्यापार एवं कच्चा माल थी न कि पूँजी का निर्यात।

मार्क्सवादी परंपरा के अंतर्गत जापानी इतिहासकारों ने इस विश्लेषण का अनुसरण किया। इनोई कियोशी जैसे विद्वानों का कहना है कि मेजी सरकार एक ''निरंकुश'' सरकार थी। किसी एक वर्ग का राज सत्ता पर आधिपत्य न था और इसलिए नौकरशाही भूस्वामियों तथा उदित होते पूँजीपति वर्ग के एक गठबंधन ने सम्राट व्यवस्था की विचारधारा का उपयोग करके जनता के ऊपर नियंत्रण बनाए रखा। देश के अंदर प्रभुत्व का यह तंत्र इस आधिपत्य को देश के बाहर फैलाने के लिए भी उत्तरदायी था। रूस-जापान युद्ध इतिहास के उस दौर को स्पष्ट तौर पर रेखांकित करता है जबकि जापान ने आधुनिक पूँजीवाद के युग में पदार्पण किया। इस स्थिति में जापान पश्चिमी दबाव की प्रतिक्रिया मात्र नहीं था बल्कि उसका उद्‌भव अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों के सहयोगी के रूप में हुआ था। रूस-जापान युद्ध को जापान के द्वारा आंशिक तौर पर पश्चिमी शक्तियों के लिए लड़ा गया जिससे कि और अधिक शोषण के लिए एशिया को खोला जा सके। प्रसारवादी नीतियों का समर्थन सेना के द्वारा किया गया और उसके कारण वह अपना प्रभाव बढ़ाने में सफल हुई। व्यापारिक घरानों या **जैबात्सु** ने भी इस नीति से लाभ उठाया लेकिन वे सदैव ऐसा न कर पाए। डब्ल्यू. जी. बीजली ने इस तर्क का उपयोग करते हुए लिखा ''दाई के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष के साथ जापानी साम्राज्यवाद पश्चिमी साम्राज्यवाद की अवैध संतान हो गया।''

मैरियस जानसेन का तर्क है कि 19वीं सदी में साम्राज्यवाद एक सामाजिक मानक था और इस कारण से इसकी कोई आलोचना नहीं होनी चाहिए। जापानियों ने डार्विन के उन विचारों को स्वीकार किया था जिनके अनुसार जीवित रहने के लिए एक सतत् संघर्ष

अपरिहार्य प्रक्रिया है और जापान को अपने को जीवित बनाए रखने के लिए अपनी सीमाओं के प्रसार को जारी रखना चाहिए था। अकिरा इरिई ने ऐसे कई कारणों का उल्लेख किया है जो इसके पीछे संवाहक का कार्य कर रहे थे। उसका कहना है कि जापानी साम्राज्यवाद के प्रारंभिक दौर में आर्थिक एवं सैनिक प्रतिबद्धताएँ अविभाज्य तौर पर जुड़ी थी। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जापानी उद्योगों की प्रतियोगिता पश्चिमी कंपनियों के साथ होने लगी और जापान के प्रसार में आर्थिक कारण काफी महत्वपूर्ण हो गए। जापान ने अंतर्राष्ट्रीय ढाँचे को स्वीकार तो कर लिया परंतु 1929-30 में व्यापार एवं अर्थव्यवस्था में आई रुकावटों के कारण जापान ने पश्चिमी देशों के साथ सहयोग करने के विचार का परित्याग कर दिया। जापान ने यह भय महसूस किया कि उसको बाज़ार एवं कच्चे माल के स्रोतों से अलग कर दिया जाएगा और उसके लिए अपनी अतिरिक्त जनसंख्या के लिए कोई क्षेत्र न बचेगा। इसी भय ने जापान को सह-संपन्न क्षेत्र को बनाने के लिए बाध्य किया और जिसके कारण उसको युद्ध भी करना पड़ा।

सह-संपन्न क्षेत्र का अध्ययन एफ. सी. जोन्स के द्वारा किया गया और उसका कहना था कि इसके निर्माण का कारण एशियाई एकता की इच्छा के साथ-साथ साम्राज्यवादी नीतियाँ भी थी। 1920 के दशक में नीतियों के निर्माण में सेना का महत्व कम होने लगा था लेकिन उसने पुनः अपनी ताकत का प्रयोग करते हुए इनके निर्माण में हस्तक्षेप करना शुरू किया और इसको जहाँ एक ओर विद्यमान सामंती दृष्टिकोणों से मदद मिली वहीं पर इसकी सहायता उस संस्थागत ढाँचे ने भी की जिसने सेना को डायट के नियंत्रण के बगैर काम करने दिया। विशेष तौर पर सामाजिक उथल-पुथल औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में हुई और यह भी असंतोष को उत्पन्न करने में निर्णायक थी और इस असंतोष की इच्छा ''शोवा पुनर्स्थापन'' की थी। इन अभिलाशाओं के कारण नौजवान सैनिक अधिकारियों तथा देशभक्त संस्थाओं ने जापान को प्रसार तथा युद्ध की ओर जाने के लिए, अपने प्रभाव को और व्यापक एवं गहरा किया।

13.3 जापानी प्रसार का ढाँचा

जापान की प्रसारवादी नीतियों के कारणों को 16वीं सदी से देखा जा सकता है जबकि हिदेयोशी ने कोरिया को जीतने का प्रयास किया। लेकिन यह मानना उचित होगा कि आधुनिक जापान ने संपत्ति एवं सुरक्षा की तलाश के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक साम्राज्य के निर्माण के प्रयास किए। पश्चिमी देशों के दबाव के अंतर्गत रूपांतरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप मेजी शासक तंत्र ''धनी देश शक्तिशाली सेना'' **(फूफोकू क्यो हेई)** पर आधारित नीति को अपनाने के लिए तर्क देने में सफल हुआ। यही सर्वोच्च लक्ष्य था और अन्य माँगों की या तो अनदेखी कर दी गई या फिर उनका दमन कर दिया गया। राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक व्यवस्था के लिए एक खतरा माना गया और असंतोष को दबाए रखने के उद्देश्य में बड़े प्रतिबंधित ढंग में संसदात्मक प्रणाली का लागू किया गया। राजनीतिक व्यवस्था के वास्तविक स्तंभ सेना एवं नौकरशाही थे और वे सम्राट के अधीन कार्य करते थे तथा उनको राजनीतिक दबाव से लगभग पूर्णतः अलग रखा गया था। शिक्षा व्यवस्था का उपयोग उन विचारों के प्रचार एवं प्रसार के लिए किया गया जिन्होंने संस्थात्मक तंत्र को उद्देश्यविहीन बनाने का कार्य किया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि राष्ट्र तथा सम्राट के प्रति वफादारी एवं मेजी राजनीतिक दलों को विभिन्न गुटों के हितों का प्रतिनिधि समझा गया और इसी कारण से सेना तथा उग्र राष्ट्रवादियों के द्वारा उन्हें विघटनकारी समझा गया।

पश्चिमी साम्राज्यवाद के भय ने ''एशियाई चेतना'' को बढ़ावा दिया। इस विचारधारा के प्रतिनिधि विभिन्न पृष्ठभूमियों के लोग थे। सामान्यतः उन्होंने यह तर्क दिया कि पश्चिमी

खतरे में जापान स्वयं को एक ही तरीके से सुरक्षित कर सकता था कि वह अन्य ऐसे एशियाई देशों के साथ अपनी एकता को कायम करे जो एक समान सांस्कृतिक परंपरा का हिस्सा थे। इस गठबंधन का तात्पर्य था कि जापान को इन देशों के आधुनिकीकरण तथा विकास में सहायता करनी चाहिए।

13.3.1 प्रारंभिक दौर

जापान की प्रारंभिक प्रसारवादी नीति का मूल तत्व जनता के अधिकारों के उस आंदोलन से जुड़ा था जो जापान में एक लोकतांत्रिक ढाँचे की माँग कर रहा था। इसके कुछ समर्थकों ने कोरियाई राष्ट्रवादियों की माँगों का समर्थन करना शुरू कर दिया जबकि दूसरों ने कोरिया पर आक्रमण करने की माँग की। कोरिया पर आक्रमण किया जाए या नहीं इस बहस **(सैकनरॉन)** के पीछे बहुत से उदेश्य थे। जिस महत्वपूर्ण तर्क को आक्रमण करने के लिए लिया गया वह यह था कि ऐसा करने से बेरोज़गार सामुराइयों को रोज़गार प्राप्त होगा। अनिवार्य सैनिक भर्ती कानून के कारण सामुराइयों का सैनिक कार्यों पर स्थापित वर्चस्व समाप्त हो जाने से वे बेरोज़गार हो गए थे। इसी के साथ एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण यह था कि जापान को आधुनिक विश्व में प्रवेश करने हेतु कोरिया की मदद करने का अधिकार था। जापान द्वारा इस कार्य को एक सहयोगी के तौर पर संपन्न किया जाना था। लेकिन एक नेता के रूप में कार्य करने की जापान की इस स्थिति में धीरे-धीरे बदलाव आया और अंततः वह एक औपनिवेशिक शक्ति बन गया। जिस प्रक्रिया के द्वारा सर्व-एशियाई विचारों का एशिया की एकता के स्वप्न में रूपांतरण हुआ वह वास्तव में जापान के एशिया पर कायम होने वाले प्रभुत्व में परिवर्तित हो गया। इस विषय पर काफी गर्म बहस हुई। किंतु जापान के विद्वान निश्चय ही इस पर सहमत होंगे कि 1900 तक जापान के सर्व-एशियाई विचारों में प्रसारवाद का अस्तित्व नहीं था किंतु इसके बाद ये विचार सेना जैसे गुटों की जापान की सुरक्षा एवं धन की माँगों को पूरा करने के लिए जापान की क्षेत्रीय प्रसार की नीति का वैचारिक आधार बन गए।

13.3.2 जापान का औपचारिक साम्राज्य

जापान के औपचारिक साम्राज्य में ताइवान, कोरिया, साखालीन, क्वानतुंग क्षेत्र तथा प्रशांत महासागर के द्वीप शामिल थे। चीन-जापान युद्ध के बाद 1895 में जापान द्वारा प्राप्त किए जाने वाला ताइवान उसका प्रथम उपनिवेश था। ताइवान ने जापान को केवल उपनिवेशों का प्रबंधन करने के लिए सुअवसर उपलब्ध कराया अपितु चावल एवं चीनी की आपूर्ति भी की। ताइवान बहुत अधिक लाभदायक साबित हुआ और इस पर अधिकार करने के पाँच वर्षों के अंदर ही यह उपनिवेश आर्थिक आधार पर आत्मनिर्भर बन गया। रूस-जापान युद्ध के बाद 1905 में काराफूतों पर अधिकार कर लिया गया। इस उपनिवेश में अधिकतर निवासी जापानी एवं देशी **एइनु** थे। कुछ कोरियाई मूल के भी निवासी थे परंतु उनकी संख्या में लगातार कमी आ रही थी। इस उपनिवेश का प्रशासन जापानी प्रशासन के अधिक समीप था। 1907 में इस पर से जापान का शासन समाप्त हो गया और 1943 में यह जापान का एक भाग बन गया।

कोरिया जापान का सबसे महत्वपूर्ण उपनिवेश **(गैशी)** था और इसका अधिग्रहण 1910 में उस संधि के द्वारा किया गया जिसमें कोरियाई वासियों के साथ समान व्यवहार करने का वचन दिया गया था। कोरियाई जनता जापानियों के दबाव एवं उपस्थिति से दास बनी हुई थी लेकिन उनकी सांस्कृतिक परंपरा शक्तिशाली एवं विरोध करने वाली थी। उन्होंने जापान के साथ विलय करने के जापानी प्रयासों का कड़ा प्रतिरोध किया। इस तरह से जहाँ एक तरफ नागरिक एवं पुलिस प्रशासन में कोरियाइयों की काफी बड़ी संख्या थी वहीं पर दूसरी ओर कोरिया में स्वतंत्रता के लिए एक शक्तिशाली आंदोलन भी था।

लिया ओतुंग प्रायद्वीप पर स्थित क्वानतुंग क्षेत्र पर जापान ने 1895 में अधिकार कर लिया। लेकिन तीन देशों के हस्तक्षेप (त्रि-पक्षीय हस्तक्षेप) के कारण यह चीन को वापस प्राप्त हो गया और बाद में इसे लीज पर रूस को दे दिया गया। 1905 में रूस की पराजय के कारण इस क्षेत्र को प्राप्त करने के साथ-साथ उसने दक्षिण मंचूरिया की रेलवे को प्राप्त कर लिया। क्वानतुंग स्थित जापानी सेना ने मंचूरिया में अपने नियंत्रण का प्रसार करने के लिए इस रेलवे लाइन का प्रयोग किया और 1934 में क्वानतुंग के गवर्नर जनरल को जापानियों के अधीनस्थ मंचूको राज्य का राजदूत नियुक्त कर दिया गया।

जापान का नियंत्रण एक छोटे से द्वीप समूह माइक्रोनेशिया पर भी हो गया। इस द्वीप समूह पर स्पेन का नियंत्रण था और इन्हें स्पेन से जर्मनी ने खरीद लिया था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद इन पर जापान की नौसेना ने अधिकार कर लिया। राष्ट्र संघ ने उनके तीसरे दर्जे का क्षेत्र (C Class Territory) घोषित किया और इसका प्रशासन चलाने की अनुमति जापान को प्रदान कर दी। जापान 1933 में राष्ट्र संघ से अलग हो गया किंतु इन द्वीपों का प्रशासन उसने अपने हाथों में ही रखा। स्थानीय सरदारों के द्वारा यहाँ की देशी जनता पर शासन किया जाता था और जापानी प्रशासन ने इनको अपने अधीन रखा।

13.3.3 औपनिवेशिक प्रशासन

औपनिवेशिक प्रशासन एक उपनिवेश से दूसरे उपनिवेश में भिन्न था। कोरिया स्थित प्रशासनिक अधिकारियों को उच्च स्थान प्राप्त था। कोरिया का गवर्नर जनरल या तो सेना का सेनापति या फिर नौसेना अध्यक्ष होता था तथा 1919 तक वह अपनी रिपोर्ट सीधे-सीधे सम्राट को भेजता था किंतु इसके बाद से वह अपनी रिपोर्ट प्रधानमंत्री को भेजने लगा। अन्य सभी उपनिवेशों के अधिकारी मंत्रिमंडल के स्तर के अधिकारियों को उपनिवेशों की रिपोर्ट भेजते थे। 1919 के बाद से उपनिवेशों के सभी गवर्नर नागरिक अधिकारियों में से बने। ऐसा इस कारण हुआ कि जापान में लोकतांत्रिक विचारों का महत्व बढ़ रहा था और इसी कारण से अब ''नागरिक' तथा ''सैन्य'' कार्यों को अलग-अलग किया जाने लगा था। लेकिन कोरिया इसका अपवाद बना रहा और कोरिया के गवर्नरों को सैनिक अधिकारियों में से ही नियुक्त किया जाता रहा।

जापान के उपनिवेशों का संचालन 1895-1929 तक एक ब्यूरो के द्वारा किया जाता था और यह ब्यूरो प्रधानमंत्री या गृहमंत्री के कार्यालय से जुड़ा था। 1929 में एक औपनिवेशिक मामलों के मंत्रालय का गठन किया गया जिससे कि औपनिवेशिक प्रशासन की एकरूपता कायम की जा सके। फिर भी औपनिवेशिक गवर्नरों के पास पर्याप्त शक्ति बनी रही। जिस समय 1934 में मांचूकुओं को बनाया गया तब प्रधानमंत्री कार्यालय में इस उपनिवेश के संचालन के लिए विशेष ब्यूरो का गठन किया गया और यह ब्यूरो क्वांगतुंग क्षेत्र के मामलों की भी देखभाल करता था।

नवम्बर, 1942 में मंचूरियाई ब्यूरो तथा औपनिवेशिक मामलों के मंत्रालय का स्थान ग्रहण करने के लिए बृहत पूर्वी एशिया मंत्रालय का गठन किया गया। यह मंत्रालय क्वांगतुंग क्षेत्र, मंचूकुओ, प्रशांत महासागर के द्वीपों तथा अन्य अधीनस्थ क्षेत्रों के मामलों की देखभाल करता था। गृह मंत्रालय कोरिया, ताइवान तथा काराफूतो के लिए उत्तरदायी था। अन्य मंत्रियों को भी यह अनुमति प्रदान कर दी गई कि वे भी उपनिवेशों के अन्य मामलों में स्वयं को शामिल करें जिससे मुख्य जापान से उनके एकीकरण को सरल बनाया जा सके।

13.3.4 उपनिवेशों के साथ आर्थिक संबंध

मंचूरिया वास्तव में एक उपनिवेश न था और 1910 तक कोरिया भी जापान का एक उपनिवेश न था। लेकिन 1907 के बाद जापान के प्रमाणों में मंचूरिया के व्यापार को शेष चीन के साथ होने वाले व्यापार से अलग उद्धृत किया जाने लगा। जापान के आयातों का 18 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक 1910 से 1914 के मध्य ताइवान, कोरिया तथा क्वांगतुंग–मंचूरिया के द्वारा उपलब्ध कराया जाता था। मंचूरिया सोयाबीन, मोटा अनाज, कोरिया चावल एवं ताइवान चावल निर्यात करता था। इन सामानों के बदले ये जापानी सूती कपड़ा एवं अन्य उपभोग की वस्तुओं को प्राप्त करते थे। इन क्षेत्रों ने जापान की शहरी आबादी को सस्ता खाना उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण योगदान किया।

विदेशी निवेश के क्षेत्र में जापान की स्थिति ने इसकी अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तन को भी अभिव्यक्त किया। ब्रिटेन-जापानी गठबंधन के कारण जापान को चीन तथा कोरिया में रेलवे में निवेश करने के लिए विदेशों से ऋण प्राप्त हुआ। जिस समय चीन में बैंकों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के युग का सूत्रपात हुआ तब भी जापान एक महत्वपूर्ण योगदान करने की स्थिति में था यद्यपि इसने अधिक निवेश नहीं किया। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग बैंक का सदस्य होने के बावजूद भी जापान ने कुल ऋण का मात्र 1.8 प्रतिशत ऋण प्रदान किया।

दक्षिण मंचूरियाई रेलवे **(मेंतेत्सू)** एक अच्छा उदाहरण है कि जापान सरकार ने निवेश करने को कैसे गारंटी प्रदान की जिससे बैंक विदेशों से धन प्राप्त कर उसे रेलवे निर्माण की ओर मोड़ सके। 1914 में जापान ने जिस रेलवे निर्माण में 55 प्रतिशत पूँजी का निवेश किया उससे उसको 810 करोड़ येन प्राप्त होते थे। इसके अलावा सरकार की सहायता से जापान की वित्तीय कंपनियों ने निवेश करने वाली योजनाओं को शेष चीन में संचालित किया। ये वित्तीय कंपनियाँ कभी-कभी एक-दूसरे के साथ सहयोग करती थीं जैसे 1908 में मितसुई, मितसुबिशी तथा ओकूरा ने संयुक्त रूप से विदेशों को हथियारों की आपूर्ति करने के लिए ताइपिंग कंपनी का गठन किया। हैनीफिंग कोल एवं आयरन कंपनी जापानी निवेश का एक बड़ा क्षेत्र थी। जापान इसको ऋण एवं उधार देता था और इसके बदले वह निश्चित किए गए दामों पर लौह एवं कोयला प्राप्त करता। जापान की सबसे बड़ी स्टील उत्पादक कंपनी यावता को कच्चे एवं खनिज लोहे की सप्लाई हैनीफिंग के द्वारा की जाती थी। अन्य क्षेत्रों में पश्चिमी पूँजी की अपेक्षा जापानी पूँजी ने कम महत्वपूर्ण योगदान किया। उसकी अधिकतर पूँजी वित्त की अपेक्षाकृत वाणिज्य एवं छोटे उद्योग में लगी थी।

1914-1930 के बीच जापान के पास निवेश करने के लिए अधिक पूँजी थी और चीनी सरकार को प्रदान किए जाने वाले ऋण में इसने काफी वृद्धि की। मितसुई तथा ओकरा जैसी कंपनियों ने विशाल परियोजनाओं को स्थापित किया और सूती कपड़ा उद्योग का भी विस्तार हुआ। चीन में निवेश किए जाने वाली पूँजी अब पश्चिमी देशों की पूँजी के समक्ष हो गई थी और जिसके फलस्वरूप संघर्ष में भी वृद्धि हुई। जापान के हितों का आधार उसके आर्थिक हित हो गए और इसी के साथ-साथ 1930 तक चीन में जापानवासियों की संख्या भी 2,70,000 तक पहुंच गई।

बोध प्रश्न

1) जापान के औपचारिक साम्राज्य पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

2) औपनिवेशिक प्रशासन की क्या मुख्य विशेषताएँ थी?

....

....

....

....

....

3) उपनिवेशों के साथ जापान के आर्थिक संबंधों की रूपरेखा बताएँ।

....

....

....

....

....

13.4 प्रसार की विचारधाराएँ

जापानी साम्राज्यवाद को उन विचारधाराओं के द्वारा प्रेरित किया गया जिनको ''उग्र राष्ट्रवादी'' तथा ''फासीवादी'' कहा गया। इन विचारों में समानता इस विश्वास में थी कि जापान को विशेष तौर पर पूर्वी एशियाई देशों तथा एशियाई देशों के साथ-साथ अपनी परंपराओं एवं संस्कृति की रक्षा करने की आवश्यकता थी। इस तरह के विचारों का प्रचार भिन्न-भिन्न समयों पर बहुत-से राजनीतिक दलों के द्वारा किया गया। इस संदर्भ में निम्नलिखित उदाहरण दिया जा सकता है–

- सैगो ताकामोरी (इसने 1877 में सतसुमा के विद्रोह का नेतृत्व किया था) के समर्थकों ने **जेनयोशा** (अंधकारमय समुद्र संस्था) का गठन किया। इस संस्था ने प्रसारवादी नीतियों का समर्थन किया और इसी के साथ-साथ इन नीतियों का समर्थन सरकार में बैठे कई नेताओं ने भी किया।

- **कोकूरूकाय** (काले ड्रैगनों की संस्था) की स्थापना 1901 में उशीदारयोह के द्वारा की गई थी। यह भी एक उग्र राष्ट्रवादी संस्था थी। इसने जापान के नेतृत्व में अन्य एशियाई देशों को पश्चिमी शासन से मुक्त कराने की वकालत की। आंतरिक मामलों में इसने नैतिकता एवं परंपराओं को मजबूत करने पर बल दिया।

- प्रथम विश्व युद्ध के बाद **काकू सुकाय** (1919 में गठित जापान की राष्ट्रीय संस्था) तथा **कोकूहोन्शा** (1924 में गठित राष्ट्रीय स्थापना संस्था) महत्वपूर्ण संस्थाएँ थीं। इन संस्थाओं का मुख्य लक्ष्य जापान को समाजवाद से बचाना था। कई सैन्य अधिकारी उनके सदस्य थे। किता इक्की तथा ओकावा शुमई ने **यूजोन्शा** का गठन किया और इस संगठन ने विदेशों में प्रसारवादी नीति और देश के अंदर सैनिक शासन की वकालत की।

किता इक्की (1883-1937) प्रारंभ में एक समाजवादी था लेकिन बाद में ''शोवा पुनर्स्थापन'' तथा प्रत्यक्ष साम्राज्यिक शासन को स्थापित करने के प्रयास हेतु वह सेना के बहुत-से देशभक्त अधिकारियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया। 1919 में उसने जापान के पुनर्निर्माण की योजना की एक रूपरेखा के नाम से एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक ने

विदेशी संबंधों के साथ-साथ आंतरिक नीतियों से जुड़ी योजनाओं को प्रस्तुत किया। किता का कहना था कि जापान को ब्रिटेन एवं रूस के विरुद्ध एशिया का नेतृत्व करना चाहिए क्योंकि उन दोनों देशों का एशिया के एक बड़े भू-भाग पर अधिकार था। जापान स्वयं को सुधारने के बाद चीन एवं भारत सहित दूसरे एशियाई देशों के परिसंघ का नेतृत्व कर सकता था। किता इक्की के आंतरिक सुधार जापान के औद्योगिक विकास पर आधारित थे लेकिन यह एक ऐसा औद्योगिक विकास होना था जिसमें पूँजीपतियों की शक्ति पर नियंत्रण होगा। उसने सैनिक विद्रोह के द्वारा राजसत्ता को बदलने की भी वकालत की जिससे मेजी पुनर्स्थापन के वास्तविक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

कुछ ऐसे प्रसारवादी भी थे जिनकी परिकल्पना जापान के कृषि विकास पर आधारित थी और इसकी प्रेरणा उन्होंने जापान के विकसित कृषि अतीत से प्राप्त किया था। लेकिन दोनों ही प्रवृत्तियों ने जापान की दलगत राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा उन आर्थिक समस्याओं की जिनका विशेष तौर पर जापान के क्षेत्रों ने सामना किया–कटु आलोचना की। 1930 के दशक के प्रारंभ में ही डायट नौकरशाही एवं व्यावसायिक नेताओं के विरुद्ध एक माहौल-सा बन गया और इस व्यवस्था में परिवर्तन करने की माँग की जाने लगी। ठीक उसी तरह से जैसे कि मेजी पुनर्स्थापन ने जापान को एक नवीन दिशा तथा रूपांतरण का क्रांतिकारी कार्यक्रम प्रदान किया था, वैसे ही प्रसारवादियों ने यह महसूस किया कि अब जापान को समय की माँग को पूरा करने के लिए एक ''शोवा पुनर्स्थापन'' की आवश्यकता थी।

कोनोई फूमियारो 1918 में प्रधानमंत्री रह चुका था और उसका पश्चिमी देशों के साथ मोह भंग हो गया था। उसने 1938 में एक ऐसी नई व्यवस्था की घोषणा की जिसके द्वारा जापान एक ऐसी स्थिति को बदलने का प्रयास करेगा जिसके अंतर्गत जापान को समान अवसरों के लिए नकार दिया गया था। उसने लिखा कि जापान को आत्म-संरक्षण के लिए यथास्थिति को समाप्त करना होगा। सेना के अंदर देशभक्त संस्थाओं ने भी इन प्रश्नों पर बहस की और स्थिति को बदलने के लिए योजना बनाई। मुख्य गुटों को साम्राज्यिक गुट **(कोदो हा)** तथा नियंत्रण गुट **(तोसेई हा)** के नाम से जाना जाता था।

साम्राज्यिक गुट का नेतृत्व अराकी सदाओ के द्वारा किया गया तथा उसने सम्राट के महत्व, चीन के साथ सहयोग तथा रूस के विरुद्ध युद्ध पर बल दिया। सहयोग का तात्पर्य निश्चय ही जापान के अधीन दिशा निर्देशन से ही था। साम्राज्यिक गुट ने सर्व-एशियाई सिद्धांत के अनुरूप ढाँचे की वकालत भी की। नियंत्रण गुट का वर्चस्व 1936 के बाद स्थापित हुआ और इस गुट का नेतृत्व नागाता तेत्सुजान तथा तोजे हिदेकी के द्वारा किया गया। इस गुट का तर्क था कि आने वाले युद्ध हेतु जापान को गतिशील किया जाए। इसका यह तात्पर्य था कि अर्थव्यवस्था एवं जनता को तैयार किया जाए तथा क्षेत्र का भी प्रसार हो जिससे कि चुनौती का सामना किया जा सके। इसकी योजनाओं तथा विचारों के निर्माण में इशिवारा कंजी ने महत्वपूर्ण योगदान किया।

इशिवारा का तर्क था कि जापान को निश्चित तौर पर पहले रूस के, फिर ब्रिटेन के और बाद में संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध युद्धों की श्रृंखला को लड़ने की तैयारी करनी चाहिए। जापान एशिया का सर्वोच्च कमांडर होगा। इस भूमिका को प्रभावशाली ढंग से निभाने के लिए केवल एकता पर्याप्त न होगी बल्कि जापान को पूर्णतः युद्ध की तैयारी में व्यस्त हो जाना चाहिए। उसने कहा कि राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों को जापान की सुरक्षा के लिए एकीकृत किया जाना चाहिए और उसके लिए सेना की भूमिका राष्ट्रीय नीति को गतिशील बनाने वाली होगी।

13.5 औपनिवेशिक नीति : मान्यताएँ एवं आमुख

जापान की औपनिवेशिक नीति का निर्धारण इस मान्यता पर आधारित था कि जहाँ एक ओर उसके अंदर यूरोपीय औपनिवेशिक विचारों के साथ समानता थी वहीं दूसरी ओर भिन्नताएँ भी थीं। जापान ने ऐसी किसी सुस्पष्ट नीति का प्रारंभ नहीं किया था कि उसको अपने उपनिवेशों के प्रति किस नीति का अनुसरण करना चाहिए था। वास्तव में उसके उपनिवेशवादी विचारों का विकास समय के साथ हुआ। यूरोपीय विचार के साथ उनकी यह मान्यता समान थी कि भिन्न-भिन्न लोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार की क्षमताएँ होती हैं और ये पैतृक गुण हैं।

यूरोपीय शक्तियों का बहुत अलग सांस्कृतिक क्षेत्रों पर नियंत्रण था और इस तरह के विचारों के विकास, उनके शासन के औचित्य को सिद्ध करने के लिए किया गया। जापानियों ने भी औपनिवेशीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखा जिसके द्वारा वे अपने उन पड़ोसियों को सभ्य बना देंगे जो उनके समक्ष विकसित न हो सके थे। इस तर्कसंगत अनुदार तथा पैतृक विचार का नितोवे इनाजो तथा गोतो शिम्पई जैसे बुद्धिजीवियों एवं प्रशासकों द्वारा स्वीकृत एवं प्रचारित किया गया।

फिर भी, जापानी औपनिवेशिक साम्राज्य का प्रसार ऐसे लोगों के बीच हुआ जिनके साथ उनकी सांस्कृतिक एवं प्रजातीय समानता थी और यह ताइवान एवं कोरिया के संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय था। इसी कारण से यह विचार पैदा हुआ कि इन देशों का जापान के साथ एकीकरण कर दिया जाएगा। एकीकरणवादी विचार ने इन देशों में समग्र सांस्कृतिक धरोहर विशेषकर कन्फ्यूशियसवादी मूल्यों का जोर दिया। जापानी जनता तथा साम्राज्यिक परिवार के बीच के इस कपोल कल्पित संपर्क का उन दूसरे लोगों को शामिल करने के लिए प्रसार किया गया जो इस तरह से ''साम्राज्यिक जनता'' बन गए थे। इस तरह के विचार कई बार सतही एवं विरोधाभास से पूर्ण होते थे, जिसके कारण इनका उपयोग कई तरह की स्थितियों के औचित्य को सिद्ध करने के लिए किया गया। उन्होंने अपनी भरपूर कोशिश के साथ उन नीतियों को प्रोत्साहित किया जिनसे कानून एवं संस्थाओं का प्रसार करके उपनिवेशों को जापान के साथ एकताबद्ध करने का प्रयास किया गया। इन जापानी नीतियों के द्वारा इन उपनिवेशों की जनता को जापानी भाषा को सीखने तथा जापानी तरह के रहन-सहन एवं पहनावे को अपनाने के लिए बाध्य किया गया। जापानी उपनिवेशवाद की उदार नीतियों का प्रतिनिधित्व हारा ताकेशी के द्वारा किया गया और हारा ताकेशी ने प्रधानमंत्री के रूप में एकीकरण को शिक्षा एवं नागरिक स्वतंत्रताओं के प्रसार के माध्यम से प्राप्त करने की वकालत की। उसने कहा कि अधिकतर कोरियाई स्वतंत्रता को नहीं अपितु जापानियों के साथ समानता को चाहते थे।

1930 के दशक में इस क्रमिक एकीकरण नीति को एक कठोर नीति में रूपांतरित कर दिया गया और इस नीति के अंतर्गत इन उपनिवेशों की जनता को जापानी प्रभुत्व के अधीन करने का प्रयास किया गया। इस नीति के द्वारा इस तरह के अनुबंधों पर बल दिया जिससे कि वे स्वयं को जापान का ऋणी समझें। इसकी अभिव्यक्ति उस भाषा से भी हुई जिसमें जापान के अधिपत्य के लिए ''आतंरिक क्षेत्र'' तथा ''बाह्य क्षेत्र'' जैसे शब्दों को प्रयोग भाषा में किया गया। इस वर्गीकरण के अंदर राष्ट्रीय पहचान को बहुत कम महत्व दिया गया था और जापान ने अपने उस अधिकार को अपने पास सुरक्षित रखा जिसके अनुसार वह इन अधीनस्थ देशों पर एक श्रेष्ठ जाति की तरह शासन करता था।

13.6 1931 के बाद की प्रसारवाद नीति

हम पहले देख चुके हैं कि सैन्यवादियों ने किस तरह से जापान में सरकार पर अपना अधिकार कर लिया था। 1930 के बाद से तथा द्वितीय विश्व युद्ध के अंत तक देश की नीतियों के निर्धारण की प्रक्रिया में सेना ने निर्णायक भूमिका अदा की। सेना इस बात से सहमत थी कि जापान ने चीन के प्रति जिस ''उदार'' नीति का अनुसरण किया वह उस देश में जापान के आर्थिक हितों के लिए खतरनाक थी। जापान लगातार यह महसूस कर रहा था कि पश्चिमी ताकतें जापान की प्रगति को चीन में रोकना चाहती थीं और वे उसके साथ सहयोग नहीं कर रही थीं। वास्तव में जापान का अमेरिका के साथ मोहभंग हो गया था क्योंकि उसने 1924 में निष्कासन कानून को स्वीकार कर लिया था और महान आर्थिक मंदी के बाद उसने अधिक कर लगाने की नीति का भी अनुसरण किया। ब्रिटेन ने भी चीन में ''जापान के हितों'' का विरोध किया। अब जापानी नेताओं को यह स्पष्ट हो चुका था कि पश्चिमी ताकतों के साथ सहयोग करने के बजाय एशियाई ज़मीन पर अपनी स्थिति को सुदृढ़ एवं प्रसारित करके, अधिक लाभ प्राप्त कर सकता था।

देश के अंदर बढ़ता असंतोष आर्थिक राजनीतिक दोनों प्रकार के संकटों का परिणाम था। इसी कारण इस समय यह महसूस किया गया कि संपन्नता की आशाओं को विदेशी प्रसार के माध्यम से पूरा किया जाए।

13.6.1 मांचूकुओ की स्थापना

चीन में विशेषकर मंचूरिया में जापान के आर्थिक हित बढ़ते जा रहे थे और इसी कारण से यहाँ पर जापानी हितों तथा रेलवे मार्गों को सुरक्षित रखने के लिए क्वागतुंग सेना को रखा गया। यह भी महसूस किया गया कि मंचूरिया में जापान की विशेष स्थिति को प्राप्त करने तथा बनाए रखने के लिए आक्रामक नीति का अनुसरण करना अपरिहार्य था। अन्य लोगों के द्वारा इस विचार को स्वीकृत किया गया।

18 सितम्बर, 1931 को क्वांगतुंग सेना के अधिकारियों ने दक्षिणी मंचूरिया को रौंद डाला। इस कार्यवाही के लिए बहाना यह बनाया गया कि समीप रेलवे लाइन में एक विस्फोट से जापानी रेलवे लाइन मामूली तौर पर क्षतिग्रस्त हो गई। क्वांगतुंग सेना इस तरह के अवसर की खोज में काफी दिनों से लगी थी किंतु टोकियो सरकार ने उसे ऐसा करने से रोके रखा था। क्वांगतुंग सेना को मंचूरिया में कार्यवाही करने का अवसर प्राप्त हो गया और उसने मंचूरिया में चीन से स्वतंत्र एक कठपुतली सरकार की स्थापना की। मांचू साम्राज्य के अंतिम भूतपूर्व सम्राट पू यी को इस स्वतंत्र राज्य का मुखिया बना दिया गया एवं अब इसको मंचूको राज्य कहा जाने लगा। अब जापानी सरकार को एक निर्विवाद तथ्य का सामना करना पड़ा और अंततः मंत्रिमंडल को मंचूरिया में कठपुतली सरकार की स्थापना का अनुमोदन करना पड़ा।

13.6.2 चीन में आक्रमण का जारी रहना

मंचूरिया में आक्रमण की गतिविधियों के कारण जापान की विश्व समुदाय के द्वारा कड़ी आलोचना की गई और परिणामस्वरूप उसने स्वयं को राष्ट्र संघ से अलग कर लिया। उसकी इस कार्यवाही से यह स्पष्ट हो गया कि वह पश्चिमी देशों से भिन्न प्रकार से कार्य करेगा।

लेकिन पश्चिमी देशों ने जापानी आक्रमण के विरुद्ध चीन की कोई सहायता नहीं की और जापान ने शीघ्र मंचूरिया में विजय प्राप्त कर 1933 में चीन के उत्तरी प्रांतों में अपनी सैनिक कार्यवाही को और तेज कर दिया तथा जैहोल को मंचूको में शामिल कर लिया गया।

जापान अंतरालों में चीन में आगे बढ़ता ही चला गया। उसने विशेषकर उत्तर के उन प्रांतों की राजनीति में हस्तक्षेप किया और उन राजनीतिक आंदोलनों का समर्थन किया जो जापान के संरक्षण में राजनीतिक ''स्वायत्तता'' को प्राप्त करने की इच्छा रखते थे।

लेकिन चीन के अंदर जापान का चीनी जनता द्वारा विरोध लगातार बढ़ता गया और यह विरोध उस समय और भी शक्तिशाली हो गया जबकि 1936 में च्यांग काई शेक तथा साम्यवादियों के बीच जापान के विरुद्ध समझौता हो गया।

जापान के सैन्यवादी नेता इस बात से पूर्णतः सहमत थे कि चीन पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करने के लिए एक व्यापक स्तर का युद्ध अपरिहार्य था। सेना पर ऐसे लोगों का वर्चस्व कायम था जो मुख्य भूमि पर जापान के प्रसारवाद में विश्वास करते थे। इसके साथ-साथ जापान की चीन में होने वाली सैनिक कार्यवाही के पीछे यह भी समझ थी कि यदि चीन के अंदर सेना किसी तरह की विशेष उपलब्धि प्राप्त कर लेती है, और जनता को उनसे यह आशा थी भी, तब देश के अंदर बढ़ते राजनीतिक असंतोष को शांत किया जा सकता था।

7 जुलाई, 1937 को जापानी एवं चीनी सेना के बीच मार्कों पोलो पुल के पास लड़ाई छिड़ गई और शीघ्र ही यह लड़ाई दोनों देशों के बीच एक व्यापक युद्ध में बदल गयी। अगस्त तक पेकिंग तथा त्येनसिन पर जापान का अधिकार हो गया। दोनों के बीच युद्ध बढ़ता चला गया और जापानी सेनाओं ने च्यांग काई शेक की राजधानी नानकिंग पर दिसम्बर, 1937 में अधिकार कर लिया। जापानी सेना ने बड़े स्तर पर हत्याएँ कीं, लूट तथा बलात्कार किए और 12000 चीनी नागरिकों की हत्या कर दी गई।

1938 तक जापानी सेना ने हांको (नानकिंग के पतन के बाद च्यांग अपनी राजधानी को हांको ले गया था) एवं कैंटन पर अधिकार कर लिया। हांको के पतन के बाद च्यांग अपनी राजधानी को चुंगकिंग ले गया।

1938 तक जापानी सेना ने बहुत से बड़े नगरों तथा कई रेलवे मार्गों पर अधिकार कर लिया लेकिन अभी तक भी इसने अपनी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ न किया था। जापानी सेना को चीन के छापामार सैनिकों के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। चीन में अपनी उपलब्धियों को बनाए रखने तथा छापामारों से युद्ध करने में जापान पर आर्थिक तौर पर काफी दबाव बढ़ा।

जापान धीरे-धीरे अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के चक्रों में फंसता चला गया, जिसके कारण जहाँ देश के अंदर उग्र राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिला वहीं विश्व स्तर पर इसका अलगाव हुआ और अंततः अमेरिका के माथ इसका युद्ध हो गया।

13.6.3 जापान का धुरी शक्तियों के साथ शामिल होना

1939 में यूरोप में द्वितीय विश्व युद्ध का प्रारंभ हो चुका था। 1940 में फ्रांस में नीदरलैंड पर जर्मनी का नियंत्रण कायम हो जाने से जापान ने धुरी राष्ट्रों (जर्मनी एवं इटली) की विजय को सुनिश्चित मान लिया। 1940 में जापान ने जर्मनी एवं इटली के साथ इस घोषणा सहित यह त्रि-पक्षीय समझौता किया कि वह पश्चिमी देशों का विरोध करेगा। 1941 में जापान ने सोवियत संघ के साथ आक्रमण न करने की संधि पर हस्ताक्षर किए। इस तरह से जापान

ने चीन में स्थित अपनी उत्तरी सीमाओं की सुरक्षा को सुनिश्चित कर लिया और अब वह दक्षिण की ओर फ्रांसीसी, डच एवं अंग्रेजों के उपनिवेशों की ओर उन्मुक्त तरीके से अग्रसर हो सकता था।

जापान की प्रसारवादी नीतियों को लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका बहुत असंतुष्ट था। 1940 में जापान-अमेरिकी व्यापार संधि को समाप्त होने दिया गया। त्रिपक्षीय संधि हो जाने के बाद जापान 1941 में इंडो-चीन की ओर बढ़ा। अमेरिका, ब्रिटेन तथा हालैंड ने जापान को होने वाले निर्यातों पर पूर्ण नियंत्रण लागू कर दिया। इस निर्णय के कारण जापान को तेल एवं रबर की आपूर्ति पर विकट प्रभाव पड़ा। अमेरिका ने जापान को निर्यात किए जाने वाले सामरिक महत्व के सामानों पर भी प्रतिबंध लगा दिया क्योंकि इन सामानों पर जापान के युद्ध एवं भार उद्योग निर्भर करते थे। ये सामान लोहा एवं तेल थे।

पश्चिमी राष्ट्रों ने जिन प्रतिबंधों को लागू किया था उनसे निकलना सेना के लिए आवश्यक था। 1841 में जापान एवं अमेरिका के बीच बातचीत हुई लेकिन इस बातचीत में गतिरोध बना रहा क्योंकि कोई भी पक्ष समझौता करने के पक्ष में न था। अमेरिका ने माँग की कि जापान को न केवल इंडो-चीन क्षेत्र को खाली करना चाहिए अपितु वह चीन से भी हट जाए। लेकिन जापान भी इस बात के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ था कि अमेरिका तेल की आपूर्ति पर से प्रतिबंध उठाए। सुदूर पूर्व में जापान के आधिपत्य को मान्यता प्रदान करे और च्यांग काइ शेक को अपना समर्थन देना बंद करे।

जापानी सैन्य अधिकारी इस बात से सहमत थे कि अंततः अमेरिका के साथ युद्ध होना अपरिहार्य था और इस दिशा में अब योजना बनाई जाए। युद्ध को अपरिहार्य मानकर अक्तूबर 1941 में तोजो हिदेकी को जापान का प्रधानमंत्री बनाया गया। जापान ने चीन को छोड़ने के स्थान पर युद्ध के विकल्प को अपनाना बेहतर समझा। अब युद्ध जापान के लिए मात्र शक्ति प्रदर्शन का स्रोत ही नहीं बल्कि आर्थिक अनिवार्यता भी बन चुका था। इस समय तक जापान ने संपूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया को एक बृहत् पूर्वी एशिया सह-संपन्न क्षेत्र में परिवर्तित करने की योजना भी तैयार कर ली। इस योजना में दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्वी एशिया दोनों को शामिल किया गया। धुरी राष्ट्रों में शामिल होने के बाद जापान अपनी योजना को लागू करने के लिए पूरा उत्सुक था।

13.6.4 द्वितीय विश्व युद्ध

युद्ध को टालने के लिए अंतिम प्रयास किए गए। जापान ने अपने आक्रमण को रोकने के लिए अमेरिका से यह माँग की कि वह चीन से हट जाए और उसे विशाल आर्थिक छूटें प्रदान करें। अमेरिका ने उसकी माँगों को मानने से इंकार कर दिया और 1 दिसम्बर, 1941 को नागरिक एवं सेवाओं के नेताओं के जापानी साम्राज्यिक सम्मेलन ने अमेरिका पर युद्ध की घोषणा कर दी। 7 दिसम्बर, 1941 को जापान ने पर्ल हार्बर में आश्चर्यचकित आक्रमण कर उस पर विजय प्राप्त कर ली। जापान ने फिलीपीन्स को रौंद डाला और हांगकांग, सिंगापुर तथा इंडोनेशिया पर अधिकार कर लिया। जापानी सेनाएँ बर्मा पहुंची और इस पर अधिकार कर लिया तथा जापान भारत पर अधिकार करने की योजना बनाने लगा। 1942 के मध्य तक जापान ने रंगून से प्रशांत महासागर के बीच तक तथा तिमोर में मंगोलिया की मरुभूमि को अपने नियंत्रण में ले लिया था।

इस प्रशांत महासागर के युद्ध में 1945 तक जापान को माल, जान तथा धन का अपार नुकसान हुआ। पर्ल हार्बर की पराजय के बाद अमेरिका ने जापान को कुचल देने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

जनवरी 1943 में मित्र राष्ट्रों के नेतागणों ने कासा ब्लांका में बैठक की और जापान के विरुद्ध अपने प्रयासों को और अधिक मज़बूत करने का निर्णय किया। जापान ने शीघ्र ही गिलबर्ट एवं मार्शल द्वीपों में कई सामरिक महत्व के बिंदुओं को खो दिया। मित्र राष्ट्रों ने जापान के विरुद्ध दो शक्तिशाली सैनिक कमानों को लगाया और एक ने, जून 1943 में मैरियाना में सैपान पर अधिकार कर लिया और मार्च, 1945 में जिमा पर। दूसरी ने, फरवरी 1945 में फिलीपीन्स पर अधिकार किया। यहाँ से दोनों कमानों ने संयुक्त तौर पर जापान के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की और अब उनका लक्ष्य ओकीनावा था, जिस पर उन्होंने जून, 1945 में नियंत्रण कर लिया।

मित्र सेनाओं ने जापान के दरवाजे पर दस्तक दी और वे ऐसे क्षेत्र में पहुंच गए जहाँ से जापान पर बमबारी की जा सकती थी। 1944 से मित्र सेनाएँ लगातार जापान पर बमबारी कर रही थी और जिनके कारण अनेक जापानी नगरों पर बमबारी की गई और हजारों नागरिक मारे गए तथा अरबों की सम्पत्ति का नुकसान हुआ।

26 जुलाई, 1945 की पौट्सडेम घोषणा के अनुसार जापान को बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण करने की घोषणा की गई और इसके उपरांत उसकी सेना पर अधिकार, उसका असैन्यीकरण और उसको अपने क्षेत्र को खाली करने का प्रावधान था। 6 और 9 अगस्त को नागासाकी तथा हिरोशिमा पर एटम बमों को गिरा दिया गया और जापान ने अपनी हार को स्वीकार करते हुए 15 अगस्त, 1945 को आत्मसमर्पण कर दिया।

बोध प्रश्न 2

1) प्रसार की विभिन्न विचारधाराओं की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

2) औपनिवेशिक नीति के ''एकीकरण संबंधी विचार'' की व्याख्या करें।

....

....

....

....

....

3) मांचूकुओ की स्थापना पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

13.7 सारांश

जापानी साम्राज्यवाद का उत्थान पश्चिमी प्रसार एवं संघर्ष के दौर में हुआ। जापान को पश्चिमी देशों के समक्ष समानता के आधार को स्थापित करने के लिए दोहरे कार्यों को पूरा करना पड़ा। प्रथम उसने असमान संधि व्यवस्था को समाप्त किया और ठीक उसी समय उसने अपने नियंत्रण एवं प्रभुत्व का प्रसार कर इस कार्य को कार्यान्वित किया। पश्चिमी राष्ट्रों ने जापान के सम्मुख चुनौती प्रस्तुत की थी और जापानी नेतृत्व उसके प्रति भलीभांति सजग था और इसके बदले में उसका यह विश्वास था कि जापान की संपन्नता के लिए उसका चीन के बाज़ारों एवं संसाधनों पर नियंत्रण करना अपरिहार्य था। जापान के चीन में जो हित थे उनके कारण उसका ब्रिटेन एवं अमेरिका के साथ संघर्ष हुआ लेकिन जापान ने भी इन दोनों देशों के साथ अपने व्यापारिक एवं सामाजिक संबंधों को बनाए रखा। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि जापान एवं रूस के हित भी एक समान थे परंतु उनमें इनके लिए संघर्ष हुआ। जापानी नीति निर्माता समय-समय पर अपनी नीतियों की मूलभूत भावना के विषय में भिन्न-भिन्न मत रखते थे। जापान ने प्रारंभ में ब्रिटेन के साथ गठबंधन किया और वह मुक्त द्वार (Open Door) की नीति में शामिल हो गया। लेकिन 1905 के बाद उसने मंचूरिया में अपने स्वतंत्र प्रभाव क्षेत्र की स्थापना के लिए प्रयास करने शुरू कर दिए। इसके औचित्व को कोरिया की सुरक्षा के नाम पर उचित ठहराया गया और कोरिया के अधिग्रहण को जापान की सुरक्षा की आवश्यकताओं के लिए सही बताया गया। तब जापान ने चीन में अपने विशेषाधिकारों में वृद्धि एवं प्रसार किया। दूसरी ओर कुछ ऐसे भी विचारक थे जिन्होंने पश्चिम की घुसपैठ के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए चीन तथा जापान के सहयोग की बात की। ऐसा करने के लिए जापान को चीन के बाज़ारों एवं संसाधनों की आवश्यकता थी।

इस तरह से जापानी साम्राज्यवाद किसी एक लक्ष्य से प्रेरित न होकर दो तत्वों पर आधारित था:

i) जापान के उपनिवेशों का एक ऐसा औपचारिक साम्राज्य था, जिनसे उसको खाद्य संसाधन एवं सामरिक लाभ प्राप्त होता था।

ii) जापान उस अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का एक सदस्य था, जिसने उसको चीन में संधि करने के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों को प्रदान किया। इन विशेषाधिकारों का प्रसार उसकी आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति की प्रगति के साथ हुआ। ये लाभ जापान के आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान एवं विकास के लिए महत्वपूर्ण थे।

1929 की आर्थिक मंदी के कारण व्यापार में हुए पतन से इस व्यवस्था में गंभीर व्यवधान आ गया और जापान को अपने हितों की सुरक्षा के लिए गतिशील होना पड़ा। इसके द्वारा न केवल सामजिक हितों की रक्षा करना आवश्यक समझा गया बल्कि उन बाज़ारों एवं क्षेत्रों की सुरक्षा करनी आवश्यक थी जहाँ से जापान को कच्चा माल एवं संसाधन उपलब्ध होते थे। इस नीति को कार्य रूप देने की ज़रूरत के कारणवश अंततः बृहत पूर्वी एशिया सह-संपन्न क्षेत्र का निर्माण हुआ। इस क्षेत्र में जापान, कोरिया, मंचूको, उत्तरी चीन तथा ताइवान आंतरिक औद्योगिक क्षेत्र का निर्माण करते थे जबकि दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा प्रशांत महासागर के द्वीप समूह एवं चीन का शेष भाग संसाधनों की आपूर्ति के लक्ष्य को पूरा करने वाले थे। जापानी साम्राज्यवाद ने जापान के लिए एक प्रभाव क्षेत्र की स्थापना की।

जापानियों ने पश्चिमीवाद के विरोध की भावना का उपयोग किया और सावधानीपूर्वक औपनिवेशिक विरोधी आंदोलनों की एशिया में सहायता की। जापानियों ने फ्रांसीसियों, डचों

तथा अंग्रेज़ों को इस क्षेत्र से बाहर करने में मदद की। चीन में जापान की कार्यवाहियों के कारण चीनी साम्यवादियों की स्थिति मज़बूत हुई। युद्ध की समाप्ति पर ताइवान एवं मंचूरिया का चीन में विलय कर दिया गया, जबकि 1950 के युद्ध द्वारा कोरिया का विभाजन हो गया। जापानियों का ''सभ्य करने का लक्ष्य'' संक्षिप्त एवं असफल साबित हुआ। जापान और इस क्षेत्र के देशों के बीच स्थापित कड़वाहट अब भी इस तथ्य का जीवित दृष्टांत है। यह भी एक वास्तविकता है कि दक्षिण कोरिया एवं ताइवान एक समय में जापान के उपनिवेश थे और आज वे सफलतम औद्योगिक देश हैं तथा मंचूरिया चीन के भारी उद्योगों का एक बड़ा केंद्र है।

13.8 शब्दावली

सह-समृद्वि क्षेत्र : इस शब्द का प्रयोग जापान के द्वारा पश्चिमी शक्तियों के आर्थिक हितों के विरुद्ध एशियाई देशों को जोड़ने के लिए किया गया। यद्यपि बाद में इसका प्रयोग जापान ने स्वयं अपने हितों के लिए किया।

शोवा पुनर्स्थापना : 1926 में शोवा जापान के सम्राट हो गए। उग्र राष्ट्रवादियों तथा सेना के नौजवान अधिकारियों ने अपने विचारों को कार्यरूप देने के लिए शोवा पुनर्स्थापना की वकालत की।

माइक्रोनेशिया : प्रशांत महागागर के द्वीप।

अंतर्राष्ट्रीय बैंकिंग सहयोग : बहुत से बैंकों का गठबंधन।

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) जापान के औपचारिक साम्राज्य में ताइवान, कोरिया, सखालिन, क्वांगतुंग के क्षेत्र तथा प्रशांत महासागर के द्वीप शामिल थे। आप अपने उत्तर का आधार उपभाग 13.3.2 को बनाएँ।

2) औपनिवेशिक प्रशासन एक उपनिवेश से दूसरे में भिन्न था किंतु कोरिया को सर्वोच्च दर्जा प्राप्त था। आप अपने उत्तर में गृह मंत्रालय में जुड़े ब्यूरो की भूमिका को भी शामिल करें। देखें उपभाग 13.3.3

3) देखें उपभाग 13.3.4

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 13.4

2) आप अपने उत्तर का आधार भाग 13.5 को बनाएँ।

3) आपका उत्तर उपभाग 13.6.1 पर आधारित होना चाहिए।